निज़ामुद्दीन औलिया और अमीर खुसरो

ईशा सरदेसाई द्वारा पुनर्लिखित

सदियों पहले की बात है, भारत में एक महान सूफ़ी गुरु रहा करते थे। वे अपने ज्ञान और कृपा के लिए, अपनी दरियादिली व उन चमत्कारों के लिए विख्यात थे जो उन्होंने लोगों के जीवन में किए थे। उनका नाम था, हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया और वे सूफ़ी सन्तों की चिश्ती परम्परा से थे।

हज़रत निज़ामुद्दीन की ख़ानक़ाह दिल्ली के बाहरी इलाके में थी। वह ख़ानक़ाह एक आध्यात्मिक, एकान्त स्थान था, एक हरा-भरा, शान्त व सुखद रमणीय स्थान जहाँ सभी वर्गों और क्षेत्रों के लोग भौतिक और आत्मिक तृप्ति पाने के लिए आया करते थे। हर दिन सैकड़ों भक्त उन औलिया के प्रति अपनी श्रद्धा और आदर व्यक्त करने की इच्छा से, वहाँ आया करते थे। निज़ामुद्दीन औलिया के पावन सान्निध्य में वे लोग वहाँ घण्टों बिताते, और कभी-कभी तो कई-कई दिनों तक वहाँ रहा करते—उनकी सिखावनियाँ ग्रहण करते, भेंट चढ़ाते और भरपूर भोजन का आनन्द लेते जो उसी अन्न से बनाया जाता था जो हज़रत निज़ामुद्दीन की ख़िदमत में पेश किया जाता था।

एक दिन सुबह के सुकून और ख़ामोशी भरे माहौल में, निज़ामुद्दीन औलिया अपने बरामदे में बैठे थे और अल्लाह की इबादत कर रहे थे, तभी उन्होंने एक आदमी को अपनी ख़ानक़ाह के आँगन में आते देखा। उस आदमी की पीठ और कन्धे झुके हुए थे, उसका चेहरा उतरा हुआ था और वह थका-माँदा और निढाल लग रहा था मानो उसने अपनी ज़िन्दगी में तमाम परेशानियाँ झेली हों। उसके कपड़े गन्दे और फटे-पुराने थे, ढीले-ढाले थे जो उसके बदन पर लटक-से रहे थे।

उस आदमी ने अपनी नज़रें ऊपर उठाईं जो हज़रत निज़ामुद्दीन की आँखों से जा मिलीं। फ़ौरन ही वह उनकी तरफ़ दौड़ा और उनके क़दमों में जा गिरा। “ऐ मेरे ख़्वाजा!” वह बोला। थकी-थकी-सी उसकी आवाज़ में मायूसी साफ़-साफ़ झलक रही थी। “मालिक!”

हज़रत निज़ामुद्दीन ने अपनी जपमाला, ‘मिस्बाह’ को अपने पास रखे मुसल्ले पर यानी प्रार्थना की चटाई पर रख दिया।

“कहो, क्या कहना चाहते हो।” आहिस्ता-से, बड़े प्यार से उन्होंने कहा।

काँपती हुई आवाज़ में उस आदमी ने कहा, “ऐ मेरे औलिया, मुझे आपकी मेहरबानी की ज़रूरत है। मेरी तीन बेटियाँ हैं जिनकी उम्र अब शादी लायक़ हो गई है। वे सभी नेक स्वभाव वाली और मेहनती हैं। लेकिन, मैं ठहरा एक अभागा किसान। आप तो जानते ही हैं कि कोई भी लड़का ऐसा नहीं मिलता जो बिना दहेज के किसी लड़की से शादी कर ले। मैंने सारी कोशिशें कीं, मेरे बस में जो भी था वह सब मैंने कर लिया, लेकिन फिर भी मैं दहेज नहीं दे सकता। समय निकला जा रहा है और अब मैं सिर्फ़ बेबस और कंगाल ही नहीं, हताश भी हो चुका हूँ! कोई नहीं है जिसके पास मैं जा सकूँ, जिससे मदद माँग सकूँ।”

वह अपनी बात कहता रहा, “मेरे औलिया, मैंने तो उम्मीद ही छोड़ दी थी, कि तभी आपके एक चेले ने मुझे आपके बारे में बताया। उन्होंने आपके जलाल, आपकी महानता के बारे में, आपकी रहमत और आपकी दरियादिली के बारे में बताया। इसलिए मैं इतनी दूर से आपकी मेहरबानी पाने की उम्मीद से आया हूँ। मुझ पर करम कीजिए।” उसने बड़े अदब से अपना सिर झुकाया।

हज़रत निज़ामुद्दीन ने बेचारे किसान की गुहार को बड़े ध्यान-से सुना। फिर कुछ लम्हों के लिए ठहरकर उन्होंने कहा, “हाँ, मैं तुम्हारी मदद कर सकता हूँ। ऐसे बहुत-से अमीर हैं जो आध्यात्मिक ज्ञान और अन्तर-जागृति पाने यहाँ आते हैं, और वे हमेशा अपने साथ ढेर सारा चढ़ावा लेकर आते हैं। बताओ, क्या तुम तीन दिन मेरे साथ यहाँ रुक सकते हो?”

“जी हाँ, जी हाँ, मैं कुछ भी करने को तैयार हूँ!” किसान बोला।

“ठीक है, तो फिर अगले तीन दिनों में लोग जो भी नज़राना मुझे देंगे, वह सब तुम्हारा! तुम वह सब ले जा सकते हो,” हज़रत ने कहा।

किसान की आँखें ताज्जुब से फैल गईं। उसने सोचा, *अरे वाह! कैसी रहमत! कैसी मेहरबानी! निज़ामुद्दीन औलिया मुझे, महज़ एक किसान को वे सब नज़राने दे देंगे जो लोग उनकी ख़िदमत में पेश करेंगे!* अपने दिल में उसने हज़रत का बड़ा एहसान माना। वह निज़ामुद्दीन के पास ही बैठ गया और इन्तज़ार करने लगा।

एक घण्टा बीता। दूसरा घण्टा बीता। और आख़िरकार वह दिन भी बीत गया। लेकिन अब तक हज़रत निज़ामुद्दीन के दीदार के लिए कोई भी नहीं आया था। एक भी इनसान उन्हें चढ़ावा चढ़ाने नहीं आया!

हज़रत निज़ामुद्दीन ने किसान की ओर बड़ी मेहरभरी नज़र डाली और बोले, "अभी कल का दिन भी तो है।"

और इसलिए अगली सुबह जब हज़रत निज़ामुद्दीन आकर बरामदे में अपने आसन पर बैठे और अपनी इबादत शुरू की, तब किसान भी वहीं आकर उनके नज़दीक ही बैठ गया। वह भी औलिया के साथ दुआ करने लगा। सब कुछ ख़ामोश था—बस जो आवाज़ें आ रही थीं, वे थीं कुछ दूरी पर चहक रहे परिन्दों की। सुबह का सूरज आसमान में चढ़ता जा रहा था।

फिर एक बार, पू ऽ ऽ रा ऽ ऽ दिन गुज़र गया। कोई भी निज़ामुद्दीन औलिया की दुआओं के लिए नहीं आया। जब शाम ढलने लगी तो निज़ामुद्दीन औलिया किसान की ओर देखकर बोले, "अभी तो कल का दिन भी बाक़ी है।"

तीसरी सुबह हज़रत निज़ामुद्दीन फिर बरामदे में आकर अपनी जगह पर बैठ गए। सामने का आँगन हरा-भरा, खिलाखिला था और वहाँ के फूलों में एक ख़ास महक थी। सूरज की किरणें पेड़ों की पत्तियों से छनकर आ रही थीं और इस छनी हुई रोशनी में हज़रत निज़ामुद्दीन के चेहरे का नूर और भी दमकता हुआ नज़र आ रहा था। आज ख़ानक़ाह की फ़िज़ा कुछ अलग ही महसूस हो रही थी, उसमें कुछ ऐसा था जो ख़ास था—सब कुछ धुला-धुला, चटकीले रंगों से भरा था और हर कहीं ग़ज़ब की ख़ूबसूरती छाई हुई थी।

लेकिन फिर भी, बात वहीं की वहीं रही : न कोई दीदार के लिए आया, न कोई दुआ माँगने। न कोई ज़ियारत यानी तीर्थयात्रा के लिए आया, न ही कोई नया जिज्ञासु, और न कोई नया चेला ही आया। एक भी इनसान वहाँ नहीं फटका।

किसान बड़ी उलझन में पड़ गया। जिन तीन दिनों के लिए उसे ठहरने के लिए कहा गया था, उतने दिनों में हज़रत निज़ामुद्दीन को न कोई चढ़ावा चढ़ाया गया, न कोई नज़राना पेश किया गया, न ही कोई धन-दौलत! उसे यक़ीन ही नहीं हो पा रहा था कि यहाँ भी, हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया की ख़ानक़ाह में भी उसकी बदनसीबी उसका पीछा नहीं छोड़ रही थी। उसका मन—और वह ख़ुद भी बड़ा बेचैन था। वह सोचने लगा, *मैंने ऐसा क्या ग़लत कर दिया है?*

किसान हज़रत निज़ामुद्दीन की ओर मुड़ा, मायूसी और परेशानी उसके चेहरे पर साफ़ दिख रही थीं। वह बोला, "मेरे ख़्वाजा, मैंने जितना सोचा था, मैं उससे कहीं ज़्यादा बदनसीब, कहीं ज़्यादा अभागा हूँ। मुझे नहीं पता कि मैं अपनी तीन कुँवारी बेटियों को रुख़सत कैसे करूँगा। लेकिन अब मुझे जाना होगा। मेहरबानी करके मुझे अब जाने की इजाज़त दीजिए।"

निज़ामुद्दीन औलिया बोले, "हर इनसान अपनी-अपनी किस्मत लेकर पैदा होता है। तुम्हें अपनी तीनों बेटियों की शादी की ज़िम्मेदारी तो निभानी ही होगी। तुम सही जगह आए हो—तुम्हें जिस चीज़ की ज़रूरत थी, उसके लिए और उससे भी कहीं ज़्यादा पाने के लिए। लेकिन मैं ठहरा एक फ़कीर। जो भी मुझे लोगों से मिलता है वही मैं ज़रूरतमन्दों को दे देता हूँ।"

किसान ने सिर झुकाकर हामी भरी।

हज़रत निज़ामुद्दीन ने कहा, "फिर भी, मेरे पास ऐसा कुछ है जो मैं तुम्हें दे सकता हूँ। तुम उसे बेच देना और उससे मिलने वाले पैसों से अपनी वापसी के सफ़र के दौरान खाने के लिए कुछ ख़रीद लेना।"

किसान ने ऊपर देखा। यह देखकर उसका दिल भर आया कि ये औलिया इतनी कोशिश कर रहे हैं कि वापसी में उसके पास खाने के लिए कुछ हो।

निज़ामुद्दीन खड़े हुए और अपने कमरे में गए। वे जब लौटे तो उनके पैरों में जूतियाँ थीं। वे आकर किसान के सामने खड़े हो गए और अपने पैरों से जूतियाँ उतराते हुए बोले, "इन्हें ले लो और जाकर बाज़ार में बेच दो। इससे कम से कम तुम्हें खाने के लिए कुछ रक़म तो मिल ही जाएगी।"

किसान ने जूतियाँ उठाईं और शक़भरी निगाह से उन्हें देखा। वह असमंजस में था कि पता नहीं उनसे उसे कितने पैसे मिलेंगे : जूतियाँ फटी-पुरानी थीं, उनका तलवा क़रीब-क़रीब घिस चुका था। फिर भी, उसने हज़रत निज़ामुद्दीन की बात पर भरोसा किया। उसने हज़रत को आख़िरी बार सलाम किया और हाथों में जूतियों को लेकर वहाँ से चल दिया।

धूलभरी सड़क पर चलते-चलते धूप इतनी तेज़ हो गई मानो सूरज उससे भी तेज़ चल रहा हो। उसके पाँव बहुत भारी हो गए थे और मन पूरी तरह उलझन से घिर चुका था। भूख के मारे उसके पेट में चूहे दौड़ रहे थे। लगभग बीस मिनट तक बड़ी मुश्किल से चलते हुए वह एक बड़े-से घने व छायादार पेड़ के पास आया जिसकी डालियाँ कुछ झुकी हुई थीं। चैन की साँस लेते हुए वह अपने आप से बोला, *अरे वाह, क्या बात है। मैं कुछ देर इसी पेड़ के नीचे आराम कर लेता हूँ।*

पेड़ की छाँव में वह बस लेटा ही था और उसकी आँखें झपकी ही थीं कि उसे सड़क पर किसी के आने की आहट सुनाई दी। उसने अधखुली आँखों और धुँधली नज़र से देखा तो उसे एक हल्की-हल्की-सी चमक दिखाई दी—एक अलग ही तरह की झिलमिलाहट-सी—जो उसी की ओर आ रही थी। धूप इतनी तेज़ थी कि आँखें चौंधिया रही थीं। वह चमचमाती आकृति धीरे-धीरे बड़ी से बड़ी होती गई और आख़िरकार वह देख सका कि दरअसल वह है क्या। वह एक बहुत बड़ा कारवाँ था : सन्दूकों से लदा नौ ऊँटों का कारवाँ।

सबसे आगे वाले ऊँट पर एक आदमी बैठा था। वह बढ़िया रेशमी लिबास पहने हुए था और उसके सिर की पगड़ी माणिक, पन्ना, नीलम और ऐसे ही कई बेशक़ीमती नगीनों से जड़ी हुई थी। जैसे ही कारवाँ उस पेड़ के नज़दीक पहुँचा जिसके नीचे किसान आराम कर रहा था, ऊँट पर बैठे आदमी ने कारवाँ रुकवा दिया। वह अपने ऊँट से नीचे उतरा और सीधे किसान के पास आया। यह देखकर किसान को बहुत ताज्जुब हुआ।

“माफ़ कीजिए जनाब,” उस आदमी ने किसान से कहा। अदब से भरी उसकी आवाज़ में एक अलग-सी मिठास थी। “क्या आप हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया को जानते हैं?”

हाँ, हाँ, क्यों?” किसान ने कहा। “हाँ, बिल्कुल जानता हूँ। मैं बस उनकी ख़ानक़ाह से ही आ रहा हूँ।”

“आहऽऽऽ,” उन भलेमानस ने कहा। “जी, जी मुझे लग ही रहा था कि आप उन्हें जानते होंगे। बात यह है कि मैं अपने ऊँटों के साथ यहाँ से गुज़र रहा था कि तभी मुझे—मुझे एक अनोखी ख़ुशबू आई . . .।” वह आदमी कुछ पल रुका, उसकी आँखें मानो किसी सपने में खो-सी गईं और उसने एक गहरी साँस ली।

फिर उसने आगे कहा, “मुझे पूरा यक़ीन है कि यह मेरे मुर्शिद, मेरे ख़्वाजा की मौजूदगी की ख़ुशबू है। और यह ख़ुशबू यहीं कहीं से आ रही है—या तो आपके पास से, या इस पेड़ से या फिर— ”

तभी उस शख़्स की नज़र वहाँ गई : उन जूतियों पर, हज़रत निज़ामुद्दीन की जूतियों पर। उसकी आँखें डबडबा उठीं।

मीठी आवाज़ में उसने पूछा : “ओह—क्या ये . . . औलिया की हैं?”

“हाँऽऽऽ . . . उन्हीं की हैं।” किसान ने धीरे-से कहा। इस बात से अनजान कि यह शख़्स अचानक रोने क्यों लगा है, किसान उस भले इनसान की ओर बड़ी हैरानी से देखने लगा। “उन्होंने मुझे इन्हें बाज़ार में बेचने के लिए दिया है। इससे मुझे खाने के लिए कुछ पैसे मिल सकते हैं।”

“बेचने के लिए?” उस शख़्स ने हैरान होकर किसान से पूछा। “क्या औलिया ने आपसे कहा कि इन्हें बेच दो?

“हाँ, उन्होंने यही कहा . . .।” किसान ने दबी आवाज़ में कहा।

उस शख़्स ने जवाब दिया : “अगर यह मेरे औलिया का हुक़्म है, तो मैं इन्हें आपसे ख़रीदूँगा। और इसके बदले में आप यह सब ले लीजिए—मेरा पूरा कारवाँ ले लीजिए! मेरे सारे ऊँट, इन सन्दूकों में भरा सारा रेशम, ये खुश्बूदार इत्र, सभी मसाले, जवाहिरात और सारा का सारा सोना, सब ले लीजिए। आप यह सब कुछ ले लीजिए। और ये जूतियाँ मुझे दे दीजिए।”

“यह . . . सब . . . जो कुछ भी है . . . सब ले लूँ?” अब किसान को यक़ीन नहीं हो रहा था।

“बिलकुल। यक़ीनन, सब कुछ ले लीजिए।” उस शख़्स ने मज़बूती के साथ कहा।

और इस तरह उन दोनों के बीच लेन-देन हुआ। किसान ऊँट पर चढ़ गया, उसे यक़ीन ही नहीं हो रहा था कि उसकी किस्मत यूँ करवट बदलेगी। वह किसान पूरा कारवाँ—सारे सन्दूक, रेशम और सोना—लेकर फुर्ती से वहाँ से चल दिया। वह शख़्स, जिसका नाम था अमीर खुसरो, उसने अपने मुर्शिद, अपने गुरु की जूतियाँ ले लीं।

खुसरो बहुत देर तक उन्हें निहारते रहे, उन्हें अपनी आँखों पर भरोसा ही नहीं हो रहा था। उनके हाथों में थीं, हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया की जूतियाँ, उनकी पादुकाएँ : गुरुकृपा का, श्रीगुरु के आशीर्वादों का ख़ज़ाना, गुरुज्ञान का और दुनिया के सभी गूढ़ रहस्यों और गुह्य ज्ञान का भण्डार। वे उनके स्पन्दनों को महसूस कर पा रहे थे, वे पादुकाएँ प्राणशक्ति से स्पन्दायमान हो रही थीं, उस प्राणशक्ति से जो कि भगवान का श्वास ही है।

खुसरो एक जाने-माने शायर, संगीतकार और आलिम यानी विद्वान थे जिन्होंने कई सालों तक दिल्ली के सुल्तानों की ख़िदमत की थी। शाही दरबार की अपनी ख़िदमत से अलग होकर उन्होंने अपनी सारी कमाई—सारी दौलत और सामान को कारवाँ पर बाँध लिया और वे अपनी बाक़ी ज़िन्दगी अपने मुर्शिद की ख़िदमत में बिताने के लिए निकल पड़े थे। नौ ऊँट, सोने और बाक़ी सारी क़ीमती चीज़ों से भरे

सन्दूक जो कुछ देर पहले ही किसान ले गया था—वही उनके ज़िन्दगीभर की भौतिक कमाई थी। पर इसमें से कुछ भी उनके लिए कोई मायने नहीं रखता था, ख़ासकर उसके मुक़ाबले जो अब उनके पास था, उनके मुर्शिद से मिला हुआ नायाब तोहफ़ा।

वे पेड़ की झुकी हुई डालियों के नीचे बैठ गए, और उन पादुकाओं को अपने सिर पर रख लिया। वे गहन समाधि में चले गए—कई घण्टे बीत गए, फिर एक पूरा दिन, दो दिन, और फिर तीन दिन बीत गए। आख़िरकार, जब उन्होंने अपनी आँखें खोलीं तो आस-पास का माहौल पहले जैसा ही दिखाई दिया : वही धूल से भरी सड़क, यहाँ-वहाँ उगे हुए पौधे, दूर से दिखता शहर। पर फिर भी सब कुछ बदला-बदला-सा था, या शायद अमीर ख़ुसरो ही ख़ुद बदल गए थे और इन सब चीज़ों को नई निगाह से देख रहे थे। हर चीज़ जीती-जागती लग रही थी, साँस ले रही थी, हर चीज़ में मानो एक धड़कन थी—और अमीर ख़ुसरो ख़ुद भी इस सबका एक हिस्सा थे। वे हरेक चीज़ के साथ एकजान हो चुके थे।

उन्होंने अपना हरा रेशमी कमरबन्द उतारा। बहुत सँभालकर उन्होंने श्रीगुरुपादुकाओं को उस रेशमी कपड़े में लपेटा और फिर से अपने सिर पर रख लिया। अपने हाथों से पादुकाओं को सँभाले हुए वे धीरे-से उठे और हज़रत निज़ामुद्दीन की ख़ानक़ाह की ओर चल पड़े।

जब वे वहाँ पहुँचे, तब हज़रत निज़ामुद्दीन बरामदे में बैठे थे और मिस्बाह के मनके फेर रहे थे। ख़ानक़ाह तरह-तरह के रंगों, आवाज़ों और ख़ुशबुओं से सराबोर थी : ऐसा लग रहा था मानो पंछी एक सुर में गा रहे हों; फूलों की बहार आई थी; सूरज की किरणें पेड़ों के बीच लुका-छिपी खेल रही थीं और तरह-तरह की परछाइयाँ बना रही थीं।

हज़रत निज़ामुद्दीन ने ख़ुसरो को अपने सिर पर हरे रेशम की एक पोटली रखे अपनी ओर अदब से आते देखा। जब ख़ुसरो उनके नज़दीक आए तो हज़रत ने पूछा : "यह तुम्हारे सिर पर क्या है?"

ख़ुसरो ने फ़ौरन कहा, "ऐ मेरे मुर्शिद, मेरे ख़्वाजा, ये आपकी मुक़द्दस पैज़ार, आपकी पादुकाएँ हैं!"

"ये तुम्हें कहाँ से मिलीं?"

"ये मैंने एक ग़रीब किसान से ख़रीदी हैं," ख़ुसरो ने कहा। "यहाँ से कुछ ही दूरी पर वह इन्हें लेकर एक पेड़ के नीचे बैठा था।"

"और तुमने इनकी क्या क़ीमत दी?"

खुसरो का सीना फ़ख़्र से फूल उठा। उन्होंने जवाब दिया, "ऐ मेरे औलिया! मैंने उस आदमी को अपनी *सारी की सारी* दौलत दे दी। मैंने उसे *नौ* ऊँटों का अपना कारवाँ दिया। और उन ऊँटों पर रेशम, खुशबूदार इत्र, मसाले, हीरे-जवाहिरात, सोना और भी बहुत-सी चीज़ें लदी हुई थीं!"

हज़रत निज़ामुद्दीन मिस्बाह फेरते रहे और उन्होंने अमीर खुसरो से कहा, "तो, तुम्हें ये माटी के मोल मिल गईं।"

©२०२१एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन®। सर्वाधिकार सुरक्षित।